

# ‘सा विद्या या विमुक्तये’

□ पितराम सिंह गोदारा

हमने संविधान के अनुच्छेद 45 द्वारा शिक्षा के सार्वजनीकरण के जिस लक्ष्य को 10 वर्षों में प्राप्त कर लेने का संकल्प व्यक्त किया था, उस लक्ष्य को हम आज तक प्राप्त नहीं कर पाये हैं।

राजस्थान में अनेक कारण गिनाये जा सकते हैं, जैसे प्रदेश की विषम भौगोलिक व आर्थिक परिस्थितियां, सामाजिक समस्याएं, अभिभावकों का आर्थिक पिछड़ापन आदि-आदि । किन्तु लक्ष्य

---

45/शिक्षा-विमर्श/अक्टू-नवम्बर, 2002

प्राप्ति में हमारे विद्यालय, अरूचिकर एवं बोझिल पाठ्यक्रम तथा परम्परागत शिक्षण पद्धतियां भी अवरोधक के रूप में कम जिम्मेदार नहीं हैं ।

जो प्रश्न मुंह बाये खड़े हैं उनमें कुछ इस प्रकार हैं - विद्यार्थी विद्यालय में क्यों नहीं जाना चाहते हैं ? शिक्षा तो प्रफुल्लता प्रदान करती है फिर यह भय, उदासीनता व आत्मग्लानि का बोल-बाला क्यों ? शिक्षा तो रास्ता बनाना सिखाती है, प्रोत्साहन देती है, उन्हें ऊर्जावान बनाती है फिर उनमें ऊर्जाहीनता क्यों ? क्यों वे एक दूसरे से अजनबी बने रहते हैं ? क्यों उनमें रटने की प्रवृत्ति का विकास होता है? क्यों अच्छे अंक लाने की होड़ में उनका मानसिक चैन छिन जाता है? आखिर इन सबका जिम्मेदार कौन है ?

तुलना तथा प्रतिस्पर्द्धा बालक के जीवन में विष घोल देते हैं । सब बालक अतुलनीय अद्वितीय है । किन्तु अभिभावक बालक को किसी दूसरे जैसा बनाना चाहते हैं । बालक किसी दूसरे जैसा होने के लिए नहीं बना । बालक से उसका स्वयं का आधार नहीं छीनना है । उसे वैसा ही होने देना चाहिए जैसा वह होने के लिए बना है । सब में अपना-अपना सौंदर्य है । उस सौंदर्य को प्रकट होने दो । शिक्षा का उद्देश्य तो बालक के आन्तरिक गुणों को उजागर करना है ।

आप ग्रामीण या शहरी किसी भी विद्यालय के पास कुछ देर के लिए ठहरें और उस विद्यालय में प्रवेश करने वाले बालकों के चेहरों का अवलोकन करें । आप पायेंगे कि किसी भी बालक के चेहरे पर ताजगी नहीं है, मुक्त हंसी नहीं है, चेहरा लटका हुआ, मायूस व तनावग्रस्त है । विद्यालय में प्रवेश करने वाला हर बालक परेशान है । किसी को अध्यापक के डण्डे का भय है तो किसी को गृह कार्य न करके लाने का भय साल रहा है । किसी को कक्षा में पिछड़ जाने का डर सता रहा है तो किसी को कक्षा में सबके सामने अपमानित होने का भय है । कोई इसलिए भयभीत है कि उसको कक्षा में जो कुछ बताया गया है वह न तो समझ में ही आया और न याद है । किसी को परीक्षा में कम अंक आने का भय सता रहा है तो किसी को मां-बाप की डांट-फटकार का दुःख सता रहा है सबकी अपनी-अपनी पीड़ाएँ हैं, परेशानियाँ हैं । कैसे मिलेंगी इन अबोध बालकों को इन परेशानियों से मुक्ति । चारों ओर के इस दबाव से वह कोमलावस्था में ही टूटने लगता है । उसका अपना आधार ढहने लगता है ।

आज विद्यालयों में एक ही तत्व पर सबसे ज्यादा जोर दिया जा रहा है, और वह है होड़ । हमारा संपूर्ण कक्षा शिक्षण इसी स्पर्द्धा और प्रतियोगिता के साये में जी रहा है । बालक का कोमल मन इस होड़ के बोझ के नीचे दब-सा गया है । उसके मन में एकाकीपन

घर करने लगता है और वह इस घुटन व ऊब से छुटकारा पाना चाहता है । इन परिस्थितियों में या तो बालक विद्यालय छोड़ देता है या असफलता को गले लगा लेता है । और फिर शुरू होती है भटकाव की स्थिति । विद्यालयों में प्रेम और सहकार का पक्ष कमजोर होने लगा है । भारी भरकम पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक और कापियों की बढ़ती तादाद गृह-कार्य का बढ़ता बोझ, परीक्षा में अच्छे अंक लाने की मारामारी के नीचे बालक का हंसता मुस्कराता जीवन मुरझाने लगता है ।

हमारी शैक्षिक प्राथमिकताओं में अनेक विसंगतियाँ हैं और उनमें तारतम्यता का अभाव भी है । हमारी शिक्षा का जो भी प्रसार हुआ है उसका महत्व परिणाम की दृष्टि से भले ही आंका जा सके गुणवत्ता की दृष्टि से नहीं । हमारी शिक्षा का आधार सूचना भर देना मात्र है जबकि शिक्षा का अर्थ जागरूकता पैदा करना है, स्वयं के प्रति बोध उत्पन्न करना है । दूसरों के प्रति कितना ही जानो, उसमें आनन्द की अनुभूति हो ही नहीं सकती । सूचनाएं टूस कर उसे कम्प्यूटर या सुपर कम्प्यूटर बनाया जा सकता है । जो संवेदनहीन और गंधहीन होता है वह सुगंध नहीं बिखेर सकता । जहां बनाने और पाने की आकांक्षा हो जाती है वहां अंकुरण की संभावना गायब हो जाती है ।

विद्यार्थियों में विद्यालय के प्रति अरूचि का भाव पैदा होने का कारण प्रचलित परम्परागत शिक्षण पद्धतियाँ हैं । उनके अनुसार बालक को खाली डिब्बा माना जाता है और शिक्षक को उन्हें अपने ज्ञान से भरना होता है । शिक्षक पढ़ाता है और बालकों को पढ़ाया जाता है । शिक्षक सब कुछ जानता है, बालक कुछ नहीं जानता । शिक्षक चिन्तन करता है, शिक्षक बोलता है, बालक विनम्रतापूर्वक सुनता है । बालक को अनुशासित किया जाता है । शिक्षक चयन करता है और चयनित बातों को बालक पर लादता है । शिक्षक सक्रिय रहता है और बालक को सक्रिय होने का भ्रम उत्पन्न किया जाता है । शिक्षक अधिगम प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु होता है और बालक सहायक पदार्थ मात्र रह जाता है ।

इस प्रकार शिक्षक और बालक परस्पर विरोधी स्थिति में रहते हैं । बालक से अपेक्षा की जाती है कि वह शिक्षकों द्वारा दिये जाने वाले तथ्यों को संचित करता चला जाए । बालक को तर्क शक्ति प्रयोग में लाने के अवसर प्रायः बिल्कुल नहीं दिये जाते और इस प्रकार शिक्षा उसकी सृजनात्मक शक्ति विकसित करने के स्थान पर उसे कुण्ठित करने और व्यवस्था को बदलने तथा आगे बढ़ने के स्थान पर यथा स्थिति बनाये रखने का कारण बनती है । यह वस्तुतः नकारात्मक दिशा है । शिक्षा का कार्य नियंत्रण स्थापित करने के स्थान पर मुक्ति दिलाना होना चाहिए । भय से सृजनात्मकता, सौन्दर्यबोध गायब हो जाते हैं, 'सा विद्या या विमुक्तये' ।◆